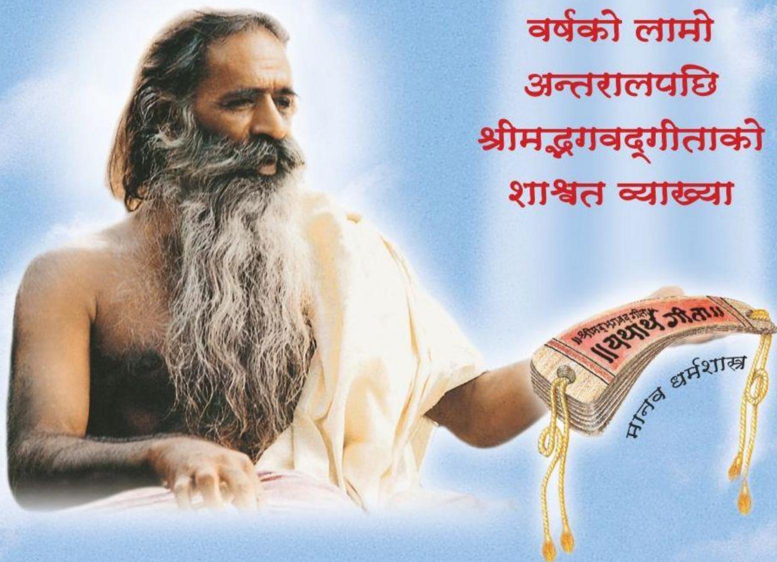
।।श्रीमद्भगवद्गीता।।

।।यथार्थ गीता।।

५२००

वर्षको लामो
अन्तरालपछि
श्रीमद्भगवद्गीताको
शाश्वत व्याख्या



।।श्रीमद्भगवद्गीता।।

।।यथार्थ गीता।।

मानव धर्मशास्त्र

स्वामी अड़गड़ानन्द

NEPALI

लेखक प्रति........

'यथार्थ गीता' को लेखक एउटा सन्त हुनुहुन्छ, जो शैक्षिक उपलब्धिहरूसंग सम्बद्ध न भए पनि सद्गुरु-कृपाको फलस्वरूप ईश्वरीय आदेशहरूद्वारा संचालित हुनुहुन्छ। लेख्ने कार्यलाई वहाँले साधना-भजनमा व्यवधान मान्नु हुन्छ; तर गीताको यस भाष्यमा निर्देशन नै निमित्त बन्यो। भगवानले वहाँलाई अनुभवमा भन्नुभयो कि वहाँको सबै वृत्तिहरू शान्त भइसकेको छ, एउटा सानो वृत्ति मात्र बाँकी छ- गीता लेख्ने। पहिले त स्वामीजीले यस वृत्तिलाई भजनद्वारा काट्नको लागि प्रयत्न गर्नुभयो, तर भगवान्को आदेशको मूर्तस्वरूप हो - 'यथार्थ गीता'। भाष्यमा जहाँ पनि गल्ती हुन्थ्यो, भगवानले सच्चाई दिनुहुन्थ्यो। स्वामीजीको स्वान्तः सुखाय यो कृति सर्वान्तः सुखाय बनोस्, यसै शुभकामनाको साथ।

- प्रकाशकको तर्फबाट

।। ॐ नमः सद्‌गुरुदेवाय ।।

।। श्रीमद्भगवद्गीता ।।

।। यथार्थ गीता ।।

मानव-धर्मशास्त्र

व्याख्याकार :
परमपूज्य श्री परमहंस महाराजज्यूको कृपा-प्रसाद
स्वामी श्री अड़गड़ानन्दज्यू
श्री परमहंस आश्रम शक्तेषगढ़
ग्राम-पत्रालय- शक्तेषगढ़, जिल्ला- मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश, भारत
फोन : (०५४४३) २३८०४०

प्रकाशक :
श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट
न्यू अपोलो एस्टेट, गाला नं 5, मोगरा लेन (रेलवे सबवे के पास)
अंधेरी (पूर्व), मुम्बई - 400069

सम्पर्क :
श्री परमहंस आश्रम झौखेल-१
भक्तपुर, काठमाण्डौ, नेपाल - मो०: ९८५१०३४८१०, ९८४१९६२७७५



श्रीकृष्ण जुन स्तरको कुरा गर्दछन्, क्रमशः हिडेर त्यसै स्तरमा उभिएका कुनै महापुरुषले नै भन्न सक्नेछन् कि श्रीकृष्णले जुन बेला गीताको उपदेश दिनुभएको थियो त्यसबेला उहाँको मनको भाव के थियो? मनका सबै भावलाई व्यक्त गर्न सकिंदैन। केहीलाई अभिव्यक्त गर्न सकिन्छ भने कतिपय हाउ-भाउद्वारा व्यक्त गरिन्छ र बाँकी पर्याप्त क्रियात्मक हुन्छन्, जसलाई कुनै साधकले साधनाद्वारा मात्र जान्न सक्छ। जुन स्तरमा श्रीकृष्ण हुनुहुन्थ्यो, क्रमशः त्यस अवस्थामा पुगेका महापुरुषले नै जान्दछ कि गीताले के भन्छ? यस्ता महापुरुषले गीताका पंक्तिहरूलाई दोहोऱ्याउने मात्र गर्दैन बरू त्यसको मूलभाव पनि दर्शाउने गर्छ; किनकि जुन दृश्य श्रीकृष्णको अगाडि थियो त्यही त्यस वर्तमान महापुरुषको अगाडि पनि छ। त्यसैले उसले देख्दछ, तपाईंलाई पनि देखाउँछ, तपाईंभित्र पनि जागृत गराउँछ, त्यस बाटोमा तपाईंलाई हिडाउन पनि सक्दछ।

'पूज्य श्री परमहंसज्यू महाराज' पनि त्यसै स्तरको महापुरुष हुनुहुन्थ्यो। वहाँको वाणी र अन्तःप्रेरणाले गीताको जुन अर्थ मैले ग्रहण गरें त्यसैको संकलन 'यथार्थ गीता' हो।

– स्वामी अड़गड़ानन्द

हाम्रो प्रकाशहरू

पुस्तकहरू		भाषा
यथार्थ गीता	❖ *भारतीय भाषाहरू*	हिन्दी, मराठी, पंजाबी, गुजराती, उर्दू, संस्कृत, उड़िया, बंगला, तमिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड़, आसामी, सिन्धी।
	❖ *विदेशी भाषाहरू*	अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, नेपाली, स्पेनीश, फारसी, नार्वेजीयन, चायनीज, डच, इटालियन, रूसी।
शंका समाधान		हिन्दी, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी।
जीवनादर्श एवं आत्मानुभूति		हिन्दी, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी।
अंग क्यों फड़कते हैं? क्या कहते हैं?		हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, जर्मन।
अनछुए प्रश्न		हिन्दी, मराठी, गुजराती।
एकलव्य का अंगूठा		हिन्दी, मराठी, गुजराती।
भजन किसका करें?		हिन्दी, मराठी, गुजराती, जर्मन, अंग्रेजी, नेपाली।
योगशास्त्रीय प्राणायाम		हिन्दी, मराठी, गुजराती।
षोडशोपचार पूजन-पद्धति		हिन्दी, मराठी, गुजराती।
योगदर्शन-प्रत्यक्षानुभूत व्याख्या		हिन्दी, गुजराती, संस्कृत।
ग्लोरिस् ऑफ योगा		अंग्रेजी।
प्रश्न समाज के- उत्तर गीता से		हिन्दी।
बारहमासी		हिन्दी।
अहिंसा का स्वरूप		हिन्दी, मराठी, नेपाली।

ऑडियो कैसेट्स

यथार्थ गीता	हिन्दी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी।
अमृतवाणी	हिन्दी।

(श्री स्वामीज्यूको मुखारविन्दबाट निःसृत
अमृतवाणिहरूको संकलन
वाल्यूम १-५५ सम्म।)

गुरुवंदना (आरती)

ऑडियो सिडिज् (MP3)

यथार्थ गीता	हिन्दी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी, जर्मन, बंगला।
अमृतवाणी	हिन्दी।

अनन्तश्री विभूषित,
योगिराज, युग पितामह
परमपूज्य श्री स्वामी परमानन्द जी
श्री परमहंस आश्रम अनुसुइया
(चित्रकूट)
को परम पावन चरणमा
सादर समर्पित
अन्तःप्रेरणा




गुरु-वन्दना

।। ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान् की जय ।।

जय सद्गुरुदेवं, परमानन्दं, अमर शरीरं अविकारी।।
निर्गुण निर्मूलं, धरि स्थूलं, काटन शूलं भवभारी।।

सूरत निज सोहं, कलिमल खोहं, जनमन मोहन छविभारी।।
अमरापुर वासी, सब सुख राशी, सदा एकरस निर्विकारी।।

अनुभव गम्भीरा, मति के धीरा, अलख फकीरा अवतारी।।
योगी अद्वैष्टा, त्रिकाल द्रष्टा, केवल पद आनन्दकारी।।

चित्रकूटहिं आयो, अद्वैत लखायो, अनुसुइया आसन मारी।।
श्री परमहंस स्वामी, अन्तर्यामी, हैं बड़नामी संसारी।।

हंसन हितकारी, जग पगुधारी, गर्व प्रहारी उपकारी।।
सत्-पंथ चलायो, भरम मिटायो, रूप लखायो करतारी।।

यह शिष्य है तेरो, करत निहोरो, मोपर हेरो प्रणधारी।।
जय सद्गुरु.........भारी।।

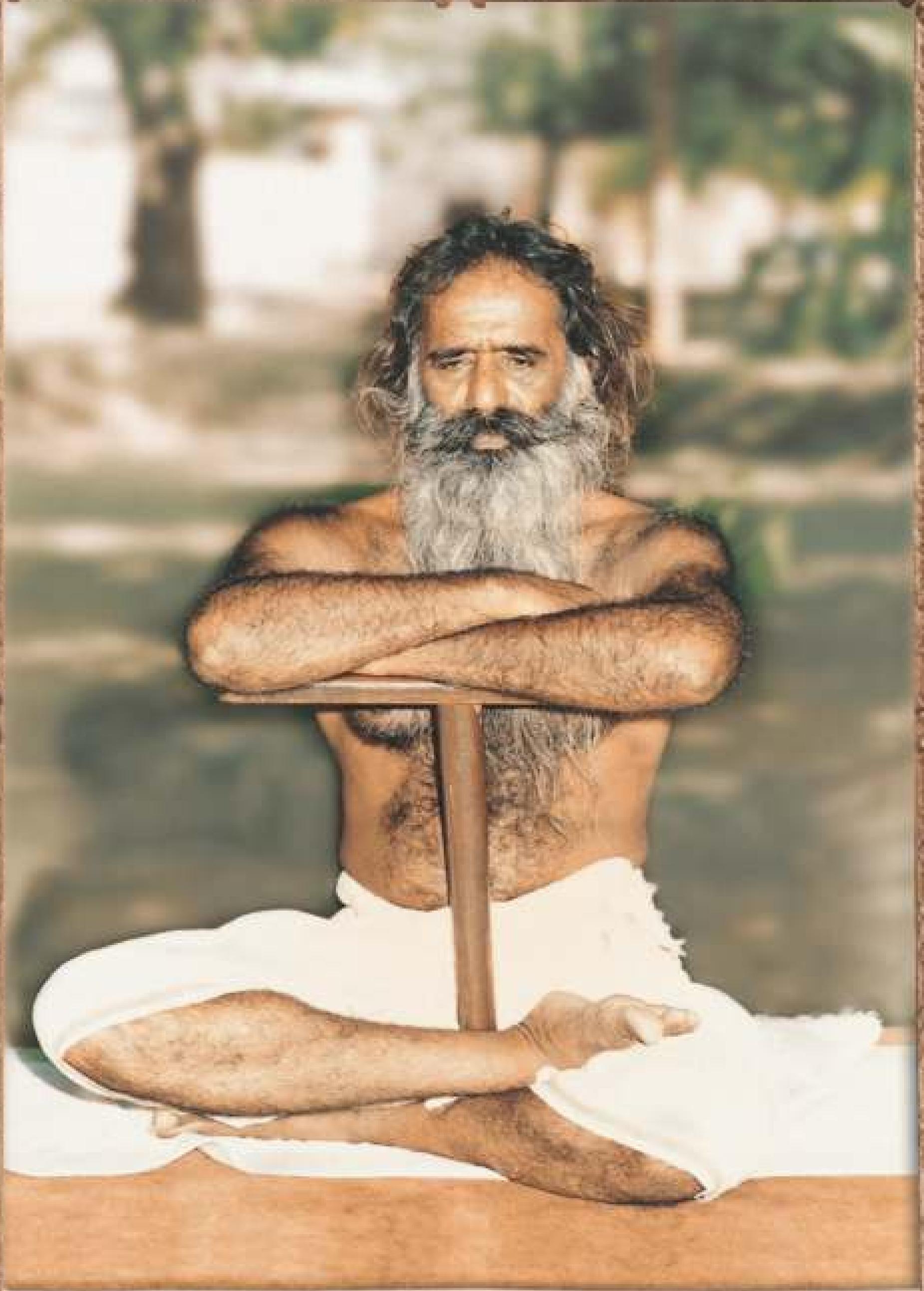
।। ॐ ।।




आत्मने मोक्षार्थं जगत् हिताय च



श्री श्री १००८ श्री स्वामी परमानन्दजी महाराज (परमहंसजी)
जन्मः शुभ सम्वत् विक्रम १९६९ (१९११ ई.)
महाप्रयाण ज्येष्ठ शुक्ल ७, २०२६, दिनांक २३/०५/१९६९ ई.
परमहंस आश्रम अनुसुइया, चित्रकूट



श्री स्वामी अड़गड़ानन्द जी महाराज





WORLD RELIGIOUS PARLIAMENT

(विश्व धर्म संसद्)

C-121, KIRTI NAGAR, NEW DELHI - 110 015 (INDIA).

विश्वगौरव सम्मानपत्र

वेदवेदांग आयुर्वेद ज्योतिषादि शास्त्रपरम्परासुरक्षाव्रती, अखिल संस्कृतवाङ्मयसंरक्षण—प्रचार—प्रसारपक्षधर आर्षसनातनमर्यादाजीवनपद्धतिसदाचारपरायण, "सर्वभूतहिते रतः—वसुधैव कुटुम्बकम्" के सद्भावना पर्यावरण से ओतप्रोत,

सम्माननीय श्री स्वामी अड़गड़ानन्द जी महाराज - परमहंस आश्रम

निवासी शक्तेशगढ़ चुनार (मिर्जापुर) को

अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन में विश्वगौरव सम्मानपत्र से विभूषित किया जाता है।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ।

World Religious Parliament is pleased to confer
The Title of Vishwagaurav
In recognition of his meritorious contribution for World Development
through श्रीमद्भगवद्गीता, धर्मशास्त्र, (भाष्ययथार्थगीता)
दिनांक कुम्भ मेला 10-4-98 हरिद्वार

Chairman (आगरा)
Presentation Committee

Acharya Prabhakar Mishra
Chairman
World Religious Parliament

बीसवीं शताब्दी के अंतिम महाकुम्भ के अवसर पर हरिद्वार में समस्त शंकराचार्यों, महामंडलेश्वरों, ब्राह्मण महासभा और ४४ देशों के धर्मशील विद्वानों की उपस्थिति में विश्व धर्म संसद द्वारा पूज्य स्वामी जी को विश्वगौरव सम्मान पत्र प्रदान किया गया ।



विश्व धर्म संसद्

WORLD RELIGIOUS PARLIAMENT

C-121, KIRTI NAGAR, NEW DELHI 110 015 (INDIA)

सम्मान प्रमाणपत्र

"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्" के मौलिक सिद्धान्तों पर आधारित विश्व में निरोगसमाज की स्थापना तथा शारीरिक मानसिक बौद्धिक सामाजिक स्वास्थ्य की उपलब्धि के लिए प्रयत्नशील एवं बाह्य तथा आन्तरिक पर्यावरण की स्वच्छता के लिए संकल्पित विश्व धर्मसंसद् प्राच्यअर्वाच्य ज्ञान विज्ञान की किसी भी शाखा के माध्यम से मानवता की सेवाओं में समर्पित व्यक्तियों को सम्मान करने में गौरव समझती है।

इसी धारणा-अवधारणा के दृष्टिकोण से उल्लेखनीय ज्ञान तथा सेवाओं के लिए श्री विश्वमानव के एक धर्मशास्त्र दाता विश्वगौरव स्वामी अड़गड़ानन्द जी को यथार्थ गीता धार्मिक क्षेत्र/विषय में विश्वगुरु सम्माननीय उपाधि से सम्मानित तथा जनसेवा के क्षेत्र में अग्रणी प्रमाणित करती है।

श्रीमद् भगवद् गीता भाष्य "यथार्थ गीता" धर्मशास्त्र है।

World Religious Parliament is pleased to confer the above Title in recognition of his meritorious contribuiton for World Development through ______________________

26-1-2001

Chairman
Presentation Committee
or
Presiding Authority



Acharya Prabhakar Mishra
Chairman (Indian Region)
World Religious Parliament

विश्व धर्म संसद ने विश्व मानव धर्मशास्त्र श्रीमद्भगवद्गीता के भाष्य 'यथार्थ गीता' पर परमपूज्य विश्वगौरव परमहंस स्वामी श्री अड़गड़ानन्द महाराज जी को प्रयाग के परम पावन पर्व महाकुम्भ के अवसर पर दिनांक २६-१-२००१ को विश्वगुरु की उपाधि से विभूषित किया।

।।श्री काशीविश्वनाथो विजयते।।

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-शास्त्रार्थविद्यावतार-विश्वविश्रुत-महामहोपाध्यायदिविरुदविभूषक
पण्डितसम्राट-प्रातःस्मरणीय श्री शिवकुमारशास्त्रिमिश्रप्रतिष्ठापिता
वाराणसेयसर्वविधविद्वत्समाज-प्रतिनिधिभूता-

श्री काशीविद्वत्परिषद्

पत्राचार कार्यालय :-
डी.१७/५८, दशाश्वमेध,
वाराणसी, उत्तर प्रदेश
मो. नं. ९४१५ २८५८५६
टे. नं. ०५४२-२४५२११३

दिनांक 1.3.04

श्री काशीविद्वत्परिषद् समय-समय पर धर्म की समीक्षा करती आयी है । धर्म के सम्बन्ध में यह समाज को निर्देश देने का अधिकार रखती है । धार्मिक प्रकरणों में यह भारत की बहुमान्य सर्वोच्च संस्था है । किसी निर्णय को संशोधित करने का अधिकार परिषद् की कार्यकारिणी को है किन्तु धर्म और धर्मशास्त्र अपरिवर्तनशील होने से आदिकाल से धर्मशास्त्र श्रीमद्भगवद्गीता ही रही है।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ।। गीता, ४/१

अर्जुन ! इस अविनाशी योग को कल्प के आदि में मैंने सर्वप्रथम सूर्य के प्रति कहा। सूर्य ने अपने पुत्र मनु से कहा। मनु ने इस स्मृत ज्ञान को सुरक्षित रखने के लिए स्मृति की परम्परा चलायी और अपने पुत्र इक्ष्वाकु से कहा। कालान्तर में इस स्मृति ज्ञान को महर्षि वेदव्यास ने लिपिबद्ध किया। मानव जीवन का नियमन तथा निःश्रेयस प्रदान करने वाली आदि मनुस्मृति गीता ही है।

मनु के समक्ष अवतरित वेद इसी का विस्तार हैं। अन्य शास्त्र समयानुसार विश्व की विविध भाषाओं में ईश्वरीय गायन श्रीमद्भगवद्गीता की ही प्रतिध्वनि हैं। गीता की अवधारणा को स्वामी अड़गड़ानन्द जी ने 'यथार्थ गीता' में व्यक्त किया है जो शत-प्रतिशत सत्य है। परा विद्या की परिभाषा है।

स्वामी जी ने गीता की यह व्याख्या देकर विश्व मानव को एक धर्मशास्त्र, एक परमात्मा के पथ को प्रशस्त किया है । धर्मशास्त्र की व्याख्या के रूप में हम सभी 'यथार्थ गीता' की अनुशंसा करते हैं।

गणेशदत्त शास्त्री मंत्री श्री काशीविद्वत्परिषद् भारत	आचार्य केदारनाथ त्रिपाठी दर्शनरत्नम वाचस्पति अध्यक्ष श्री काशीविद्वत्परिषद् भारत

भारत की सर्वोच्च श्री काशी विद्वत् परिषद् ने दिनांक ०१-०३-२००४ को 'श्रीमद्भगवद्गीता' को धर्मशास्त्र और 'यथार्थ गीता' को परिभाषा के रूप में स्वीकार किया है ।

।।श्री काशीविश्वनाथो विजयते।।

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-शास्त्रार्थविद्यावतार-विश्वविश्रुत-महामहोपाध्यायदिविरुदविभूषक
पण्डितसम्राट-प्रातःस्मरणीय श्री शिवकुमारशास्त्रिमिश्रप्रतिष्ठापिता
वाराणसेयसर्वविधविद्वत्समाज-प्रतिनिधिभूता-

श्री काशीविद्वत्परिषद्

पत्राचार कार्यालय :-
डी.१७/५८, दशाश्वमेध,
वाराणसी, उत्तर प्रदेश
मो. नं. ९४१५ २८५८५६
टे. नं. ०५४२-२४५२११३

दिनांक 1.3.04

श्री परमहंस आश्रम, शक्तेश गढचुनार की अपनी सौभाग्यपूर्ण यात्रा का सुअवसर प्राप्त हुआ है । वहाँ के वर्तमान परमहंस स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी महाराज के दर्शन का स्मरणीय अवसर काशी की विद्वन्मण्डली के साथ मुझे प्राप्त हुआ । श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी महाराज ब्रह्मलीन योगिराज स्वामी श्री परमानन्द परमहंस जी के शिष्य है और उनके द्वारा प्राप्त मानव धर्मोपदेश को स्वरचित 'यथार्थ गीता' के माध्यम से मानव मात्र के लिये प्रसारित कर रहे है, जिस गीता का ज्ञान भगवान कृष्ण ने अपने मुखारविन्द से अर्जुन के माध्यम से समस्त मानव के लिये किया था । इसीलिये श्रीमद्भगवद् गीता मानव मात्र का धर्मशास्त्र है । भगवान एक है और सबके है अतः उनकी गीता भी एक आकाश, एक सूर्य और एक चन्द्र के समान सबके लिये है ।

इस प्रकार गीता एकतामूलक है और स्वयं भी एकता का मूल है । भगवान ने स्वयं कहा है - ममैवांशो जीव लोकः'' अर्थात् प्राणी मात्र भगवान का ही अंश है तथा अंश अंशी में भेद नही होता है । अतः प्रत्येक प्राणी भगवद्भिन्नता के आधार पर वस्तुगत्या परस्पर में भी अभिन्न ही हैं। ''तद्भिन्नाभिन्नस्य तदभिन्नत्व नियमः'' यह वस्तुस्थिति है । अतःगीता एकतामूलक तथा एकता का मूल दोनो ही है । यही गीता की यथार्थता है जिसे पूज्य परमहंस जी महाराज ने ''यथार्थ गीता'' में, जो भाष्यरुप है, प्रतिपादित किया है ।

यहाँ ''यथार्थ गीता'' पद से यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि कोई अयथार्थ गीता भी है क्योंकि गीता एक है - श्रीमद्भगवद् गीता'। प्रस्तुत 'यथार्थ गीता' श्रीमद्भगवद् गीता' का ही भाष्य है, जिसे स्वयं परमहंस श्री स्वामी जी महाराज ने प्रत्येक अध्याय की अंतिम पुष्पिका में कहा है ।- 'यथार्थ गीता' भाष्ये - ऐसा उल्लेख करते हुये । इसलिये 'यथार्थ गीता' का अभिप्रेतार्थ है । गीता की यथार्थता! इस अभिप्रेतार्थ को श्री स्वामी परमहंस जी ने इस सम्पूर्ण भाष्य में प्रतिपादित किया है ।

श्रीमद्भगवद् गीता पर अनेक भाष्य निर्मित हुए है - जैसे कर्म की प्रधानता बताते हुए लोकमान्य तिलक का गीता रहस्य, भगवद्भक्ति प्रधान वैष्णव भाष्य तथा ज्ञान प्रधान शांकरभाष्यादि ग्रन्थ! किन्तु प्रस्तुत यथार्थ गीता में एकेश्वरवाद मुख्यतया प्रतिंपादित है जिसका किसी से विरोध नहीं है, प्रत्युत्त सबके साथ एक ईश्वरत्व की अनुभूति के रुप में सामंजस्य प्रकाशक है । क्योंकि कर्मकलाप भी उसी में पर्यवसित, भक्ति भी उसी की, तथा उसी का साक्षात्कार परमपुरुषार्थ मोक्ष का साधक है । भगवान ने स्वयं कहा है-

''यत्करोषि यद्श्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय! तत्कुरुस्व मदर्पणम् ।।
''मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्व न संशयः ।।

तथा ''ज्ञात्वा मां शान्ति मृच्छति, ''ज्ञान लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधि गच्छति ''सर्व ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिस्यसि'' तथा सर्व कर्माखिलं पार्थ! ज्ञाने परिसमाप्यते'' इत्यादि । इस प्रकार प्रस्तुत ''यथार्थ गीता'' की यथार्थता है - एक परमतत्व परमात्मा के आधार पर सबमें समत्व की अनुभूति -

''समो ऽहं सर्वभूतेषु न में द्वेष्यो ऽस्ति न प्रियः ।

इस पवित्र उद्देश के साथ श्री परमहंस स्वामी अडगडानन्दजी महाराज द्वारा संस्थापित एवं संचालित यह परमहंस आश्रम ऋषियों के प्राचीन गुफाओं एवं अरण्यो की तरह इस पर्वत श्रेणी के बीच से लोक में गीतोक्त इस उपदेश को उद्बुद्ध करने वाला है कि शास्त्रानुमोदित स्वाभाविक व्यवहार को अपनाते हुए सबमें ''अभेदभावनयैव यतितव्यम् भाव को लोक कल्याणार्थ प्रसारित करना है ।

हरि ॐ तत्सत्

आचार्य केदारनाथ त्रिपाठी दर्शनरत्नम वाचस्पति
अध्यक्ष
श्री काशीविद्वत्परिषद्
भारत

भारत की सर्वोच्च श्री काशी विद्वत् परिषद् ने दिनांक ०१-०३-२००४ को 'श्रीमद्भगवद्गीता' को धर्मशास्त्र और 'यथार्थ गीता' को परिभाषा के रूप में स्वीकार किया है ।

गीता मानव मात्रको धर्मशास्त्र हो।

–महर्षि वेदव्यास

श्रीकृष्णकालीन महर्षि वेदव्यासभन्दा पहिले कुनै पनि शास्त्र पुस्तकको रूपमा उपलब्ध थिएन। श्रुतज्ञानको त्यस परम्परालाई समाप्त गर्दै वहाँले चार वेद, ब्रह्मसूत्र, महाभारत, भागवत र गीता–जस्तो ग्रन्थहरूमा पूर्व सञ्चित भौतिक र आध्यात्मिक ज्ञानराशिलाई संकलन गरी आखीरमा आफैले निर्णय दिनुभयो–

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।

(म.भा., भीष्मपर्व अ० ४३/१)

गीता राम्ररी मनन गरेर हृदयमा धारण गर्ने योग्य छ, जुन पद्मनाभ भगवानको श्रीमुखबाट निस्केको वाणी हो भने अरु शास्त्रहरूको संग्रह गर्ने के आवश्यकता?

गीताका सारांश यस श्लोकबाट प्रगट हुन्छ–

एकं शास्त्रं देवकीपुत्र गीतम्
एको देवो देवकीपुत्र एव।
एको मंत्रस्तस्य नामानि यानि
कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा।।

–(गीता–माहात्म्य)

अर्थात् एउटै शास्त्र छ जुन देवकीपुत्र भगवानले श्रीमुखबाट गाउनु भयो– गीता! प्राप्त गर्ने योग्य एउटै देउता छ। त्यस गीतमा जुन सत्य भनियो– आत्मा! आत्माबाहेक अरू केहि पनि सत्य छैन। त्यस गीतमा त्यो महायोगेश्वरले के जप्नको लागि भने?– ओम्। अर्जुन! ओम् अक्षय परमात्माको नाउँ हो, त्यसको जप गर र ध्यान मेरो धर। एउटै धर्म छ– गीतामा वर्णन गरिएको परमदेव एउटा परमात्माको सेवा। वहाँलाई श्रद्धासाथ आफ्नो हृदयमा धारण गर। अतः शुरुदेखि नै गीता तपाईको शास्त्र रहिआएको छ। भगवान् श्रीकृष्णदेखि हजारौं वर्षपछि

भएका महापुरुषहरूले एउटा ईश्वरलाई सत्य बताए, उनी गीता कै संदेशवाहक हुन्। ईश्वरसंग नै लौकिक र पारलौकिक सुखहरूको कामना गर्नु, ईश्वरसंग डराउनु, अरू कसैलाई ईश्वर न मान्नु यहाँसम्म त सबै महापुरुषहरूले भने; तर ईश्वरीय साधना, ईश्वरसम्मको बाटो पार गर्ने तथ्य कुरा मात्र गीतामा राम्ररी क्रमबद्ध ढंगले सुरक्षित छ। गीताबाट सुख–शान्ति पाउनको साथै यसले अक्षय देवत्व पद पनि दिन्छ। हेर्नुस्– गीताको गौरवप्राप्त टीका– '**यथार्थ गीता**'।

आज संसारमा सबै ठाउँमा गीताको समादर छ, तापनि यो कुनै धर्म अथवा सम्प्रदायको साहित्य बन्न सकेन; किनकि सम्प्रदायहरू कुनै न कुनै रूढिबाट ग्रसित भएका छन्। भारतमा प्रगट भएको गीता विश्व–मनीषाको धरोहर हो। अतः यसलाई राष्ट्रीय शास्त्र जस्तो सम्मान दिएर ऊँच–नीच, भेदभाव र झगडाको परम्पराले पिरोलिएका विश्वका सम्पूर्ण जनतालाई शान्ति दिने प्रयास गर्नुहोस्।

।। ॐ ।।

धर्म-सिद्धान्त — एक

१. **सबै प्रभुका पुत्र-**

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।। (गीता, १५/७)

सबै मानिस ईश्वरका सन्तान हुन्।

२. **मानव-शरीरको सार्थकता-**

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।। (गीता, ९/३३)

सुखरहित, क्षणभंगुर तर दुर्लभ मानिस शरीर पाएर मेरो भजन गर अर्थात् भजनको अधिकार मनुष्यलाई नै प्राप्त छ।

३. **मानिसका मात्र दुई जात-**

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे श्रृणु।। (गीता, १६/६)

मानिसहरू दुई प्रकारका मात्र छन्- देवता र असुर। जसको हृदयमा दैवी सम्पत्तिले काम गर्छ त्यो देवता हो र जसका हृदयमा आसुरी सम्पत्तिले काम गर्छ त्यो असुर हो। तेस्रो अरु कुनै जाति सृष्टिमा छैन।

४. **सबै कामना ईश्वरबाट सुलभ-**

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्।। (गीता, ९/२०)

मलाई भजेर मानिसहरू स्वर्गसम्मको कामना गर्छन् म तिनीहरूलाई दिन्छु। अर्थात् सबैथोक एक परमात्माबाट सुलभ छ।

५. **भगवानको शरणमा पापहरूको नाश–**

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि।। (गीता, ४/३६)

सबै पापीहरूभन्दा बढी पाप गर्नेहरू पनि ज्ञानरूपी डुङ्गाले निःसन्देह पार हुनेछन्।

६. **ज्ञान–**

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थ दर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।। (गीता, १३/११)

आत्माको आधिपत्यमा आचरण, तत्वको अर्थरूप मेरो, परमात्माको प्रत्यक्ष दर्शन ज्ञान हो र यसबाहेक अरु जे जति छ त्यो अज्ञान छ। अतः ईश्वरको प्रत्यक्ष जानकारी नै ज्ञान हो।

७. **सबैलाई भजनगर्ने अधिकार–**

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।। (गीता, ९/३०)

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।। (गीता, ९/३१)

अत्यन्त दुराचारीले पनि मेरो भजन गरेर चाँडै नै धर्मात्मा हुन्छ र सधैं रहिरहने शाश्वत शान्तिलाई प्राप्त गर्छ। अतः धर्मात्मा त्यो हो जो एक ईश्वरप्रति समर्पित छ र दुराचारीसमेतलाई भजनगर्ने अधिकार छ।

८. **भगवत्पथमा बीउको नाश हुँदैन–**

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।। (गीता, २/४०)

यस आत्मदर्शन–क्रियाको न्यून आचरणले पनि जन्म–मृत्युको डरबाट उद्धार गर्छ।

९. ईश्वरको निवास–

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। (गीता, १८/६१)

ईश्वर सबै जगतप्राणीहरूको हृदयमा बस्छ।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।। (गीता, १८/६२)

सम्पूर्ण भावले त्यो एउटा परमात्माको शरणमा जाऊ। जसको कृपाले तिमी परमशान्ति, शाश्वत परमधाम प्राप्त गर्नेछौ।

१०. यज्ञ–

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते।। (गीता, ४/२७)

सबै इन्द्रियहरूका कार्य तथा मनका चेष्टाहरूलाई ज्ञानले प्रकाशित आत्मामा संयमरूपी योगाग्निमा हवन गर्छन्।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगतीरुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः।। (गीता, ४/२९)

धेरै जसो योगी श्वासलाई प्रश्वासमा हवन गर्छन् र धेरै जसोले प्रश्वासलाई श्वासमा हवन गर्छन्। यसभन्दा माथिल्लो अवस्था भएपछि अरू श्वास–प्रश्वासको गतिलाई रोकेर प्राणायाम परायण हुन्छन्। यसप्रकार योग–साधनाको विधि–विशेषको नाउँ यज्ञ हो। त्यस यज्ञलाई कार्यरूप दिनु कर्म हो।

११. यज्ञ गर्ने अधिकार–

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम।। (गीता, ४/३१)

यज्ञ नगर्नेहरूलाई मानव–शरीर पाइदैन अर्थात् यज्ञ गर्ने दोस्रो अधिकार ती सबैलाई छ जसले मानव–शरीर पाएका छन्।

१२. **ईश्वरलाई देख्न सकिन्छ–**

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप।। (गीता, ११/५४)

अनन्य भक्तिद्वारा म प्रत्यक्ष देख्न, जान्न र प्रवेश गर्नको लागि पनि सजिलो छु।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन–
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।। (गीता, २/२९)

यस अविनाशी आत्मालाई कुनै विरलैले आश्चर्य जस्तो देख्छ अर्थात् यो प्रत्यक्ष दर्शन हो।

१३. **आत्मा नै सत्य हो, आत्मा नै सनातन हो–**

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।। (गीता, २/२४)

यो आत्मा सर्वव्यापक, अचल–स्थिर रहनेवाला र सनातन हो। आत्मा नै सत्य हो।

१४. **विधाताद्वारा निर्मित सृष्टि नाशवान छ–**

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।। (गीता, ८/१६)

ब्रह्मा र वहाँबाट निर्मित सृष्टि, देउता र दानव दुःखहरूको खानि, क्षणभंगुर र नाशवान् छन्।

१५. **देव–पूजा–**

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया।। (गीता, ७/२०)

जसको बुद्धि इच्छाबाट ग्रसित छ, त्यस्ता मूर्खहरू नै परमात्माबाहेक अरु देउताहरूको पूजा गर्छन्।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।। (गीता, ९/२३)

देउताहरूलाई पुज्नेले मेरो नै पूजा गर्छ; तर त्यो पूजा विधिहीन छ त्यसैले नष्ट भएर जान्छ।

शास्त्रविधिको त्याग–

अर्जुन! शास्त्र–विधिलाई छाडेर भजन गर्नेहरू मध्ये सात्विक श्रद्धावानले देवताहरूलाई, राजस पुरुषले यक्ष–राक्षसहरूलाई र तामस पुरुषले भूत–प्रेतहरूलाई पूज्दछन्; तर–

कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्।। (गीता, १७/६)

शरीररूपमा स्थित भूत समुदायलाई र अंतर्यामीरूपमा स्थित म परमात्मालाई उनीहरू कमजोर गर्ने हुन्। उनीहरूलाई तिमी असुर जान। अर्थात् देवताहरूलाई पूजनेहरू पनि आसुरी वृत्तिको अन्तर्गत हुन्छन्।

१६. अधम–

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु।। (गीता, १६/१९)

जसले यज्ञको निश्चित विधिलाई छाडेर कल्पित विधिहरूद्वारा यजन गर्छन्, उनीहरू नै दुःखदायक, पापाचारी र मानवहरूमा अधम हुन्। अरू कोही पनि अधम छैन।

१७. नियत विधि के हो?–

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।। (गीता, ८/१३)

ॐ, जो अक्षय ब्रह्मको परिचायक हो, त्यसको जप र म एक परमात्माको स्मरण, तत्त्वदर्शी महापुरुषको संरक्षणमा ध्यान।

१८. शास्त्र–

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत।। (गीता, १५/२०)

यसप्रकार यो अतिगोप्य शास्त्र मबाट भनियो। स्पष्ट छ कि शास्त्र गीता हो।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।। (गीता, १६/२४)

कर्तव्य–अकर्तव्यको निर्धारणमा शास्त्र नै प्रमाण हो। अतः गीतामा निर्धारित विधि अनुसार आचरण गर्नुहोस्।

१९. धर्म–

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।। (गीता, १८/६६)

धार्मिक उपद्रवलाई छाडेर एकमात्र मेरो शरणमा आउ। अर्थात् एक भगवान्प्रति पूर्ण समर्पण नै धर्मको मूल हो। त्यस प्रभुलाई पाउने विधिको आचरण नै धर्माचरण हो (अध्याय २, श्लोक ४०) र जसले त्यसलाई गर्छ त्यो ठूलो पापी नै भए पनि चाँडै धर्मात्मा हुन्छ। (अध्याय ९, श्लोक ३०)

२०. धर्म प्राप्त कहाँबाट गर्ने?–

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च।। (गीता, १४/२७)

त्यस अविनाशी ब्रह्मको, अमृतको, शाश्वत धर्मको र अखण्ड एकरस आनन्दको म नै आश्रय हु अर्थात् परमात्मस्थित सद्गुरु नै यी सबैका आश्रय हुन्।

नोट– विश्वको सबैधर्महरूको सत्यधारा गीताको नै प्रसारण हो।

।। ॐ ।।

प्राचीनकालदेखि आजसम्म मनीषीहरूद्वारा दिइएका तथ्यपूर्ण क्रमानुसार सन्देश

श्री परमहंस आश्रम जगतानन्द, ग्रा.पो.-बरैनी, कछवा, जिल्ला-मिर्जापुर (उ.प्र.)मा आफ्नो निवासको अवधिमा स्वामी श्री अड़गड़ानन्दज्यूले प्रवेश-द्वारको नजिक यो तालिकालाई गंगा दशहरा (सन् १९९३ ई.)को पवित्र पर्वको अवसरमा बोर्डमा अंकित गराउनुभयो।

।। विश्वगुरु भारत ।।

- **सृष्टिको आदिशास्त्र-**
  'इमं विवस्वते योगम्' (गीता, ४/१) भगवान् श्रीकृष्णले भन्नुभयो कि यो योग मैले सूर्यलाई भने, सूर्यले आफ्नो पुत्र मनुलाई भने, जस अनुसार एक परमात्मा नै सत्य हो, परमतत्व हो, कण-कणमा व्याप्त छ। योग-साधनाद्वारा त्यो परमात्मा दर्शन, स्पर्श र प्रवेशको लागि सजिलो छ। भगवान्‌द्वारा उपदिष्ट त्यो आदिज्ञान वैदिक ऋषिहरूदेखि लिएर आजसम्म अक्षुण रूपले प्रवाहित छ।
- **वैदिक ऋषि (अनादिकाल-नारायण सूक्त)-**
  कण-कणमा व्याप्त ब्रह्म नै सत्य हो। त्यसलाई विदित गर्नुबाहेक मुक्तिका लागि अरु कुनै उपाय छैन।
- **भगवान श्रीराम (त्रेता-लाखौं वर्ष पूर्व-रामायण)-**
  एक परमात्माको भजन बिना जसले कल्याण चाहन्छ त्यो मूर्ख हो।
- **योगेश्वर श्रीकृष्ण (५००० वर्ष पूर्व-गीता)-**
  परमात्मा नै सत्य हो। चिन्तनको पूर्णतामा त्यो सनातन ब्रह्मको प्राप्ति सम्भव छ। देवी-देवताहरूको पूजा मूर्खताको देन हो।
- **महात्मा मूसा (३००० वर्ष पूर्व-यहूदी धर्म)-**
  तिमीले ईश्वरबाट श्रद्धा हटायौ, मूर्ति बनायौ, यसले ईश्वर रिसाउनु भयो। प्रार्थनामा लाग।
- **महात्मा जरथुस्त्र (२७०० वर्ष पूर्व-पारसी धर्म)-**
  अहुरमज्दा (ईश्वर)को उपासनाद्वारा हृदयमा स्थित विकारहरूलाई नष्ट गर, जो दुःखका कारण हुन्।
- **भगवान महावीर (२६०० वर्ष पूर्व-जैनग्रन्थ)-**

आत्मा नै सत्य हो। कठिन तपस्याद्वारा यसै जन्ममा जान्न सकिन्छ।

- **गौतम बुद्ध (२५०० वर्ष पूर्व–महापरिनिब्बान सुत्त)–**
  मैले त्यस अविनाशी पदलाई प्राप्त गरेको छु, जसलाई पूर्वका मनीषीहरूले प्राप्त गरेका थिए। यो नै मोक्ष हो।
- **मसीह ईसा (२००० वर्ष पूर्व–ईसाई धर्म)–**
  ईश्वर प्रार्थनाद्वारा प्राप्त हुन्छ। मसंग अर्थात् सद्‌गुरुको नजिक आऊ, यसले कि ईश्वरको पुत्र भनिनेछौं।
- **हज़रत मुहम्मद सलल्लाहु. (१४०० वर्ष पूर्व–इस्लाम धर्म)–**
  'ला इलाह इल्लल्लाह मुहम्मदुर्र रसूलल्लाह'– जर्रे–जर्रे (कण–कण)मा व्याप्त खुदा (ईश्वर)बाहेक अरु कोही पूजनीय छैन। मुहम्मद अल्लाहका सन्देशवाहक हुन।
- **आदि शंकराचार्य (१२०० वर्ष पूर्व)–**
  संसार झूठो हो। यसमा हरि र उहाँको नाम सत्य छ।
- **सन्त कबीर (६०० वर्ष पूर्व)–**

  राम नाम अति दुर्लभ, औरे ते नहिं काम।
  आदि अन्त औ युग–युग, रामहि ते संग्राम।।

  रामसंग संघर्ष गर, उहीं नै कल्याणकारी हुनुहुन्छ।
- **गुरु नानक (५०० वर्ष पूर्व)–**
  'एक ओंकार सतगुरु प्रसादि।' एक ओंकार नै सत्य हो तर त्यो सद्‌गुरुको कृपाको प्रसाद हो।
- **स्वामी दयानन्द सरस्वती (२०० वर्ष पूर्व)–**
  अजर, अमर, अविनाशी एउटा परमात्माको उपासना गर। त्यो ईश्वरको मुख्य नाम 'ओम्' हो।
- **स्वामी श्री परमानन्दज्यू (सन् १९११–१९६९ ई०)–**
  भगवानले जब कृपा गर्नुहुन्छ तब शत्रु मित्र हुन्छ, विपत्ति सम्पत्ति हुन्छ। भगवान सबैतिरबाट देख्नुहुन्छ।

।। ॐ ।।

अनुक्रमणिका

।। ॐ ।।

प्राक्कथन

वस्तुतः गीताको टीका लेख्ने अब कुनै आवश्यकता प्रतीत हुँदैन; किनकि यसको सयौं टीकाहरू प्रकाशित भइसकेका छन्, जसमध्ये पचासौं संस्कृतमा नै छन्। गीतालाई लिएर पचासौं मतहरू छन्, जबकि सबैको आधारशिला एकमात्र गीता नै हो। योगेश्वर श्रीकृष्णले त कुनै एउटा कुरा भन्नु भएको होला अनि यो मतभिन्नता किन? वस्तुतः वक्ताले एउटा मात्र कुरा भन्दछ, तर श्रोता दसवटा बसेका छन् भने दसथरिका आशयहरू ग्रहण गर्दछन्। व्यक्तिको बुद्धिमा तामसी, राजसी अथवा सात्विक गुणहरूका जति प्रभाव छ, त्यसै स्तरबाट त्यस वार्तालाई ग्रहण गर्नसक्छ। यसभन्दा माथि त्यसले बुझ्न सक्दैन। अतः मतभेद हुनु स्वाभाविक हो।

थरिथरिका मतवादहरूबाट र कहिलेकाहीं एउटै सिद्धान्तलाई भिन्न–भिन्न काल र भाषाहरूमा व्यक्तगर्नाले साधारण मानिस संशयमा पर्छन्। धेरै टीकाहरूको बीचमा त्यो सत्यधारा पनि बगीरहेको छ, तर शुद्ध अर्थ भएको एउटा पुस्तक हजारौं टीकाहरूको बीचमा राखियो भने चिन्न गाह्रो हुन्छ, तिनीहरूमा यथार्थ कुन हो? वर्तमान समयमा गीताका धेरै टीकाहरू भइसकेका छन्। सबैले आ–आफ्नो सत्यताको उद्घोष गर्दछन्, तर गीताको शुद्ध अर्थबाट तिनीहरू धेरै टाढा छन्। निःसन्देह केही महापुरुषहरूले सत्यको स्पर्श पनि गरेका छन् तर कतिपय कारणहरूबाट त्यसलाई समाजको अगाडि ल्याउन सकेनन्।

श्रीकृष्णको आशयलाई हृदयंगम गर्न नसक्नुको मूलकारण हो, उहाँ एउटा योगी हुनुहुन्थ्यो। श्रीकृष्णले जुनस्तरको कुरा गर्नु भएको छ, क्रमशः जानेर त्यसै स्तरमा पुगेका कुनै महापुरुषले नै अक्षरशः भन्न सक्छ कि श्रीकृष्णले जुन बेला गीताको उपदेश दिनुभएको थियो त्यसबेला उहाँको मनोगत भाव के थियो? मनोगत सबै भावलाई व्यक्त गर्न सकिंदैन। केहीलाई अभिव्यक्त गर्न सकिन्छ भने कतिपय हाउ–भाउबाट व्यक्त गरिन्छ र बाँकी पर्याप्त क्रियात्मक हुन्छन्, जसलाई कुनै साधकले साधनाद्वारामात्र जान्न सक्छ। जुन स्तरमा श्रीकृष्ण

हुनुहुन्थ्यो क्रमशः त्यहाँ पुगेका महापुरुषले नै गीताको भनाइलाई बुझ्न सक्छ। त्यस्ता महापुरुषले गीताका पंक्तिहरूलाई दोहोऱ्याउने काम मात्र गर्दैन बरू त्यसको मूलभाव पनि दर्शाउने काम गर्छन; किनकि जुन दृश्य श्रीकृष्णको अगाडि थियो त्यही त्यस वर्तमान महापुरुषको अगाडि पनि हुन्छ। त्यसैले उसले देख्दछ, देखाउने छ, तपाईभित्र पनि जागृत गराउने छ र त्यस बाटोमा हिडाउने पनि छ।

'पूज्य श्री परमहंसज्यू महाराज' पनि त्यसै स्तरको महापुरुष हुनुहुन्थ्यो। उहाँको वाणी र अन्तःप्रेरणाले गीताको जुन अर्थ मैले ग्रहण गरें त्यसैको सङ्कलन '**यथार्थ गीता**' हो। यसमा मेरो आफ्नो केही पनि छैन। यो क्रियात्मक हो। साधन अपनाउने प्रत्येक व्यक्तिले यसै परिधिबाट हिड्नु पर्नेछ। जबसम्म ऊ यसबाट छुट्टिएर बसेको छ तबसम्म स्पष्ट छ कि उसले साधना गर्दैन, बरू कुनै न कुनै प्रकारको परम्परा समातेर बसेको छ। अतः कुनै महापुरुषको शरणमा जानुस्। श्रीकृष्णले कुनै अरू सत्य भन्नुभएको छैन; बरु भने– '**ऋषिभिर्बहुधा गीतं**'– ऋषिहरूले अनेकौं पल्ट जसको गायन गरेका छन्, त्यही भनेको हुँ। उनले भनेका छैनन् कि ज्ञानलाई मैले मात्र जानेको छु वा मैले मात्र बुझाउन सक्नेछु; बरू भने कुनै तत्त्वदर्शीको समक्ष जाऊ। निष्कपटभावले सेवा गरी त्यस ज्ञानलाई प्राप्त गर। श्रीकृष्णले महापुरुषहरूद्वारा शोधित सत्यलाई नै स्पष्ट गर्नुभएको छ।

गीता सुबोध संस्कृत भाषामा छ। यदि अन्वयार्थ नै लिने हो भने गीताका अधिकांश कुराहरू तपाईले स्वयं हृदयंगम गर्नु हुनेछ, तर तपाईले जस्ताको त्यस्तै अर्थ लिनु हुन्न। उदाहरणको लागि श्रीकृष्ण स्पष्ट भन्नुभएको छ कि 'यज्ञको प्रक्रिया नै कर्म हो', तापनि तपाई भन्नुहुन्छ कि खेतीगर्नु कर्म हो। यज्ञलाई स्पष्टगर्दै उहाँले भन्नुभएको छ कि यज्ञमा धेरै योगीजन प्राणवायुलाई अपानवायुमा हवन गर्दछन् र धेरैले अपानलाई प्राणवायुमा हवन गर्दछन् र धेरै जसो योगीहरूले प्राण–अपान दुबैलाई रोकेर प्राणायाम–परायण हुन्छन्। धेरै योगी इन्द्रियहरूका सम्पूर्ण प्रवृत्तिहरूलाई संयमरूपी अग्निमा हवन गर्दछन्।

यसरी श्वास–प्रश्वासको चिन्तन यज्ञ हो। मनसहित इन्द्रियहरूको संयम यज्ञ हो। शास्त्रकारले स्वयं यज्ञ बताए, तापनि तपाई भन्नुहुन्छ कि विष्णुको लागि स्वाहा भन्नु, आगोमा जौ–तिल–घीउको हवन गर्नु यज्ञ हो। ती योगेश्वरले यस्तो एउटा शब्द पनि भन्नुभएको छैन।

के कारण हो कि तपाई बुझ्न सक्नुहुन्न? टुप्पी कसेर घोक्दा पनि किन वाक्य–विन्यास नै तपाईको हातमा पर्छ? तपाई आफूलाई यथार्थ जानकारीबाट शून्य नै किन पाउनु हुन्छ? वस्तुतः मानिस जन्मेर क्रमशः ठूलो हुँदैजान्छ अनि पैतृक सम्पत्ति (घर, पसल, जग्गा–जमीन, पद–प्रतिष्ठा, गाई–गोरु, भैंसी, यन्त्र–उपकरण इत्यादि) त्यसलाई उत्तराधिकारको रूपमा पाइन्छन्। ठीक त्यसै गरी उसलाई केही प्रथा–चलन, परम्पराहरू र पूजा–पद्धतिहरू पनि उत्तराधिकारमा पाइन्छ। तेत्तीस करोड देवी–देवताहरू त भारतमा धेरै अगाडिदेखि नै गन्तीमा जसो–जसो थिए, विश्वमा उनी अनगिन्ती रूपमा छन्। शिशु जसो–जसो बढ्दछ, आफ्ना आमा–बाबू, भाई–बहिनी, छर–छिमेकमा यिनीहरूको पूजा देख्दछ। परिवारमा प्रचलित पूजा–पद्धतिहरूको अमिट छाप त्यसको दिमागमा पर्छ। देवीको पूजा पाइयो भने जीवनभरि देवी–देवी घोक्छ। परिवारमा भूत–पूजा पाइयो भने भूत–भूत रट्छ। कोही शिव त कोही कृष्ण, त कोही केही न केही समाती राख्छ। तिनीहरूलाई उसले छोड्न सक्दैन।

यस्ता भ्रान्तपुरुषलाई गीता–जस्तो कल्याणकारी शास्त्र भेटिए पनि उसले त्यसलाई बुझ्न सक्दैन। केही गरी पैतृक सम्पत्तिलाई छोड्न पनि सक्छ तर यी रूढिहरू र धार्मिक अन्धविश्वासहरूलाई छोड्न सक्दैन। पैतृक सम्पत्तिलाई पन्छाएर तपाई हजारौं माइल टाढा जानसक्नु हुन्छ, तर मन–मस्तिष्कमा अङ्कित यी रूढिगत विचारहरू त्यहाँ पनि तपाईको पछिलाग्न छाड्दैनन्। तपाईले टाउको काटेर छुट्टै त राख्न सक्नुहुन्न? अतः तपाईले यथार्थ शास्त्रलाई पनि ती रूढि, रीति–रिवाज, मान्यता र पूजा–पद्धतिहरू जस्तै ढालेर हेर्न चाहनु हुन्छ। यदि तिनकै अनुरूप कुरा ढल्छ र वार्ताको क्रम मिल्छ भने तपाई त्यसलाई सही ठान्नु हुन्छ, होइन भने गलत मान्नुहुन्छ, त्यसै कारण तपाई गीताको रहस्य बुझ्न

सक्नुहुन्न। गीताको रहस्य, रहस्य नै रही रहन्छ। यसको वास्तविक पहिचान गर्ने व्यक्ति सन्त अथवा सद्गुरु नै हुन्। उहाँले नै बताउन सक्नुहुन्छ कि गीताले के भनेको छ? सबैले जान्न सक्दैन। सबैको लागि सरल उपाय यही हो कि यसलाई कुनै महापुरुषको सान्निध्यमा बुझ्ने, जसको लागि श्रीकृष्णले बल दिएका छन्।

गीता कुनै विशिष्ट व्यक्ति, जाति, वर्ग, संप्रदाय, देश–काल अथवा कुनै रूढिग्रस्त सम्प्रदायको ग्रन्थ होइन, बरू यो सार्वलौकिक र सार्वकालिक धर्मग्रन्थ हो। यो ग्रन्थ प्रत्येक देश, प्रत्येक जाति र प्रत्येक स्तरका महिला–पुरुषका लागि र सबैका लागि हो। मात्र अरूबाट सुनेर वा कसैबाट प्रभावित भएर मानिसले यस्तो निर्णय लिनु हुँदैन कि जसको प्रभाव सोझै उसको आफ्नो अस्तित्वमाथि परोस्। पूर्वाग्रहको भावनाबाट मुक्त भएका सत्यान्वेषीहरूको लागि यो आर्षग्रन्थ आलोक–स्तम्भ हो। हिन्दूहरूको आग्रह छ कि वेद नै हाम्रो प्रमाण हो। वेदको अर्थ हो ज्ञान, परमात्माको जानकारी। परमात्मा न संस्कृतमा छ, न त संहिताहरूमा। पुस्तक त उसको संकेतमात्र हो। परमात्मा वस्तुतः हृदयमा नै जागृत हुन्छ।

विश्वामित्र चिन्तन गर्दै थिए। उनको भक्ति देखेर ब्रह्माजी आउनुभयो र भन्नुभयो– 'आजदेखि तिमी ऋषि हौ।' विश्वामित्रलाई सन्तोष भएन र चिन्तनमै लागे। केही समयपछि देवताहरूसहित ब्रह्मा पुनः आउनुभयो र भन्नुभयो– 'आजदेखि तिमी राजर्षि हौ।' तर विश्वामित्रको समाधान भएन, उनी अनवरत चिन्तनमा लागिरहे। ब्रह्माजी दैवी सम्पदाहरूसहित फेरि आउनुभयो र भन्नुभयो– 'आजदेखि तिमी महर्षि भयौ।' विश्वामित्रले भने– 'होइन! मलाई जितेन्द्रिय ब्रह्मर्षि भन्नुस्।' ब्रह्माजीले भन्नुभयो– 'अहिले तिमी जितेन्द्रिय भएका छैनौ।' विश्वामित्र फेरि तपस्यामा लागे। उनको मस्तिष्कबाट तपस्याको धूँवा निस्कन लाग्यो। अनि देवताहरूले ब्रह्मासित निवेदन गरे। ब्रह्मा पहिलेझैं विश्वामित्रसित भने– 'अब तिमी ब्रह्मर्षि हौ।' विश्वामित्रले भने, यदि म ब्रह्मर्षि हूँ भने वेदले मलाई वरण गरोस्। वेद विश्वामित्रको हृदयमा अवतरित भयो। जुन तत्व वहाँलाई थाहा थिएन, ती तत्वहरू वहाँलाई थाहा भयो। वेद भनेको यही हो न कि पुस्तक। जहाँ विश्वामित्र बस्नुहुन्थ्यो, त्यहीं वेद रहन्थ्यो।

यही कुरा श्रीकृष्ण पनि भन्नुहुन्छ कि– ''संसार अविनाशी पीपलको रुख हो, माथि परमात्मा जसको मूल र तल प्रकृतिसम्म शाखाहरू छन्। जसले यस प्रकृतिको अन्त्य गरेर परमात्मालाई जान्दछ, त्यही वैदज्ञ हो। अर्जुन! म पनि वैदज्ञ हुँ।'' अतः प्रकृतिको प्रसार र अन्त्यको साथै परमात्माको अनुभूतिको नाम 'वेद' हो। यो अनुभूति ईश्वरप्रदत्त हो, त्यसैले वेदलाई अपौरुषेय भनिएको छ। महापुरुष अपौरुषेय हुन्छन्। उनको माध्यमबाट परमात्मा नै बोल्दछ। उनी परमात्माको संदेश–प्रसारक (ट्रांसमीटर) हुन्छन्। मात्र शब्दज्ञानको आधारमा उनको वाणीमा निहित यथार्थलाई बुझ्न सकिंदैन। उनलाई त्यसैले जान्नसक्छ जसले क्रियात्मक बाटोमा हिंडेर यस अपौरुषेय (Non-Person) स्थितिलाई पाएको छ र जसको पुरुष (अहं) परमात्मामा विलीन भइसकेको छ।

वस्तुतः वेद अपौरुषेय हो; तर बोल्ने व्यक्ति सय–डेढसय महापुरुषहरूमात्र थिए, उनीहरूको वाणीको संकलनलाई 'वेद' भनिन्छ। तर जब शास्त्र लिपिबद्ध हुन्छ तब सामाजिक व्यवस्थाका नियमहरू पनि उसैको साथ लेखिने गरिन्छ। महापुरुषहरूको नाउँमा जनताले तिनको पनि पालन गर्न थाल्छन् जबकि त्यस्ता नियमहरूको धर्मसँग टाढाको पनि सम्बन्ध हुँदैन। आधुनिक युगमा मन्त्रीहरूको अगाडि–पछाडि गर्ने साधारण नेताहरूले पनि पदाधिकारीहरूबाट आफ्नो काम गराइहाल्छन्, जबकि मन्त्रीहरूले यस्ता नेताहरूलाई राम्ररी चिनेको पनि हुँदैनन्। यसैप्रकार सामाजिक व्यवस्थाकारहरू महापुरुषहरूको आडमा बाँच्ने–खाने व्यवस्थालाई पनि ग्रन्थहरूमा लिपिबद्ध गर्दछन्, जसको सामाजिक उपयोग तात्कालिक हुन्छ। वेदहरूको सम्बन्धमा पनि यस्तै कुरा देखिन्छ। तिनको चिरन्तन सत्य उपनिषद्हरूमा संग्रहित छन्। तिनै उपनिषद्हरूको सारांश योगेश्वर श्रीकृष्णको वाणी 'गीता' हो। सारांशरूपमा गीता अपौरुषेय 'वेद'–रसार्णवबाट समुद्धुत उपनिषद् सुधाको सार–सर्वस्व हो।

यसरी प्रत्येक महापुरुष जसले परमतत्वलाई प्राप्त गरिसकेको छ, स्वयंमा धर्मग्रन्थ हो। उनको वाणीको सङ्कलन विश्वमा जहाँसुकै भएपनि त्यसलाई शास्त्र भनिन्छ। तर कतिपय धर्मावलम्बीहरूको यो कथन छ कि 'जति कुरानमा

लेखिएको छ त्यतिमात्र सत्य छ। अब कुरान ओर्लने छैन।', 'ईसामसीहमा विश्वास नगरी स्वर्ग पाउन सकिँदैन। उनी ईश्वरका एक्लो छोरा थिए। अब यस्तो महापुरुष हुन् सक्दैन।'– यो उनीहरूको रूढिवादिता हो। यदि त्यही तत्वलाई साक्षात्कार गरियो भने फेरि त्यही कुरा हुनेछ।

'गीता' सार्वभौम छ। धर्मको नाममा प्रचलित विश्वका सबै धर्मग्रन्थहरूमा गीताको स्थान अद्वितीय छ। यो स्वयंमा धर्मशास्त्र होइन बरू धर्मग्रन्थहरूमा निहित सत्यको मापदण्ड पनि हो। गीता त्यस्तो कसी हो जसमा कसिएर प्रत्येक धर्मग्रन्थमा लुकेको सत्य प्रकाशित हुन्छ र परस्पर विरोधी भनाईहरूको समाधान पनि निस्केर आउँछ। प्रत्येक धर्मग्रन्थमा संसारमा बाँच्ने–खाने कला र कर्मकाण्डहरूको बाहुल्य छ। जीवनलाई आकर्षक बनाउनको लागि तिनैलाई गर्ने–नगर्ने जस्ता रोचक तथा भयानक वर्णनहरूले धर्मग्रन्थहरू भरिएका छन्। कर्मकाण्डको यसै परम्परालाई जनताले धर्म ठान्न थाल्छन्। जीवन–निर्वाहको कलाको लागि निर्मित पूजा–पद्धतिहरूमा देश–काल र परिस्थितिहरूका अनुसार परिवर्तन स्वाभाविक हुन्छ। धर्मको नाममा समाजमा कलहको यही एकमात्र कारण हो। 'गीता' यस्ता क्षणिक व्यवस्थाहरूभन्दा माथि उठेर आत्मिक पूर्णतामा प्रतिष्ठित गर्ने क्रियात्मक अनुशीलन हो, जसको एउटा पनि श्लोक भौतिक जीवनयापनको लागि होइन। यसको प्रत्येक श्लोकले तपाईसँग आन्तरिक युद्ध 'आराधना' माँग गर्दछ। तथाकथित धर्मग्रन्थहरू जस्तो यसले तपाईलाई स्वर्ग वा नरकको द्वन्द्वमा अल्झाएर छोड्दैन, बरू त्यस अमरत्वको उपलब्धि गराउँछ जसको पश्चात् जन्म–मृत्युको बन्धन रहँदैन।

प्रत्येक महापुरुषको आफ्नो शैली र आफ्ना केही विशिष्ट शब्दहरू हुन्छन्। योगेश्वर श्रीकृष्णले पनि गीतामा 'कर्म', 'यज्ञ', 'वर्ण', 'वर्णसङ्कर', 'युद्ध', 'क्षेत्र', 'ज्ञान' इत्यादि शब्दहरूमा पटक–पटक बल दिनुभएको छ। यी शब्दहरूका आफ्ना आशय छन् र पुनरावृत्तिमा पनि यिनको आफ्नो सौन्दर्य छ। नेपाली रूपान्तरणमा यी शब्दहरूलाई त्यसै आशयमा लिइएको छ र आवश्यक प्रसङ्गहरूको व्याख्या पनि गरिएको छ। गीताका आकर्षण निम्नलिखित प्रश्नहरू

हुन् जुन प्रश्नहरूको आशय आधुनिक समाजमा हराइसकेको छ। ती प्रश्नहरू यस प्रकार छन्, 'यथार्थ गीता'मा तपाईले पाउनु हुनेछ–

१. **श्रीकृष्ण** – एउटा योगेश्वर थिए।

२. **सत्य** – आत्मा नै 'सत्य' हो।

३. **सनातन** – आत्मा सनातन हो, परमात्मा 'सनातन' हो।

४. **सनातन धर्म** – परमात्मासँग भेट्ने क्रिया हो।

५. **युद्ध** – दैवी र आसुरी सम्पदाहरूको संघर्ष 'युद्ध' हो। यी अन्तःकरणका दुई प्रवृत्तिहरू हुन्। यी दुबैको अन्त्य परिणाम हो।

६. **युद्ध–स्थान** – यो मानव–शरीर र मनसहित इन्द्रियहरूको समूह 'युद्धस्थल' हो।

७. **ज्ञान** – परमात्माको प्रत्यक्ष जानकारी 'ज्ञान' हो।

८. **योग** – संसारको संयोग–वियोगबाट रहित अव्यक्त ब्रह्मको मिलनको नाम 'योग' हो।

९. **ज्ञानयोग** – आराधना नै कर्म हो। आफूमाथि निर्भर भएर कर्ममा प्रवृत्त हुनु 'ज्ञानयोग' हो।

१०. **निष्काम कर्मयोग** – इष्टमा निर्भर भएर समर्पणको साथ कर्ममा लाग्नु 'निष्काम कर्मयोग' हो।

११. **श्रीकृष्णले कुन सत्यलाई बताए?** – श्रीकृष्णले त्यही सत्य बताए जसलाई तत्वदर्शीहरूले विगतमा नै देखिसकेका थिए र भविष्यमा पनि देख्नेछन्।

१२. **यज्ञ** – साधनाको विधि–विशेषको नाम 'यज्ञ' हो।

१३. **कर्म** – यज्ञलाई कार्यरूप दिनु नै 'कर्म' हो।

१४. **वर्ण** – आराधनाको एउटै विधि जसको नाम कर्म हो। जसलाई चार श्रेणीमा बाँडिएको छ। त्यही चार वर्ण हुन्। यो एउटै साधकको तल–माथिको स्तर हो न कि जाति।

१५. **वर्णसङ्कर –** परमात्म–पथबाट च्युत हुनु र साधनामा भ्रम उत्पन्न हुनु नै 'वर्णसङ्कर' हो।

१६. **मानिसका श्रेणी –** अन्तःकरणको स्वभाव अनुसार मानिस दुई प्रकारका हुन्छन्। एउटा देवताहरू जस्तो र अर्को असुरहरू जस्तो। यही मानिसका दुई जातिहरू हुन्, जुन स्वभावद्वारा निर्धारित छन्। यी स्वभाव घट्ने–बढ्ने गर्छन्।

१७. **देवता –** देवता हृदय–देशमा परमदेवको देवत्व अर्जित गराउने गुणहरूको समूह हो। बाह्य देवताहरूको पूजा मुर्खबुद्धिको देन हो।

१८. **अवतार –** व्यक्तिको हृदयमा हुन्छ, बाहिर होइन।

१९. **विराट् दर्शन –** योगीको हृदयमा ईश्वरद्वारा दिइएको अनुभूति हो। भगवान् साधकमा दृष्टि बनेर उभिएपछि मात्र देखिनमा आउँछ।

२०. **पूजनीय देव 'इष्ट' –** एकमात्र परात्पर ब्रह्म नै 'पूजनीय देव' हुन्। उनलाई खोज्ने स्थान हृदय–देश हो। त्यसको प्राप्तिको स्रोत त्यही अव्यक्त स्वरूपमा स्थित महापुरुषद्वारा हुन्छ।

अब यीमध्ये योगेश्वर श्रीकृष्णको स्वरूप बुझ्नलाई तपाईले अध्याय तीनसम्म पढ्नु पर्छ र अध्याय तेह्रसम्म तपाईले स्पष्ट बुझ्न थाल्नुहुन्छ कि श्रीकृष्ण योगी थिए। अध्याय दुइबाट नै सत्य स्पष्ट हुनथाल्नेछ। सनातन र सत्य एक अर्काका पूरक हुन्– यो अध्ययन दुइबाटै स्पष्ट हुँदै जानेछ। हुनत पूर्तिपर्यन्त हुँदै जानेछ। युद्ध अध्याय चारसम्म स्पष्ट हुनथाल्नेछ। एघारसम्म संशय निर्मूल हुनेछ; तर अध्याय सोह्रसम्म यस सन्दर्भमा हेर्नु पर्दछ। युद्धस्थलका लागि अध्याय तेह्र पटक–पटक पढ्नुपर्छ।

'ज्ञान' अध्याय चारबाट स्पष्ट हुनेछ र अध्याय तेह्रमा राम्ररी बुझिन्छ कि प्रत्यक्ष दर्शनको नाम 'ज्ञान' हो। योग अध्याय छःसम्म तपाईले बुझ्न सक्नु हुनेछ। हुनत पूर्तिपर्यन्त योगका विभिन्न अंशहरूको परिभाषा आएको छ। 'ज्ञानयोग' अध्याय तीनदेखि छःसम्म स्पष्ट हुनेछ। यस सन्दर्भमा अगाडि हेर्नु पर्ने आवश्यकता

छैन। 'निष्काम कर्मयोग' अध्याय दुइदेखि प्रारम्भ भएर पूर्तिपर्यन्त सम्म छ। यज्ञबारे तपाईले अध्याय तीनदेखि चारसम्म पढे स्पष्ट हुनेछ।

'कर्म'को नाम अध्याय २/३९मा पहिलो पल्ट दिइएको छ। यसै श्लोकदेखि अध्याय चारसम्म पढेपछि स्पष्ट हुनेछ कि कर्मको अर्थ आराधना, भजन किन रहेछ? अध्याय सोह्र र सत्रले यो विचार स्थिर गर्छ कि यही सत्य हो। 'वर्णसङ्कर' अध्याय तीनमा र 'अवतार' अध्याय चारमा स्पष्ट हुनेछ। वर्ण–व्यवस्थाको लागि अध्याय अठार पढ्नु पर्नेछ, हुनत सङ्केत अध्याय तीन–चारमा पनि पाइन्छ। मानिसको देवासुर भन्ने जातिहरूको लागि अध्याय सोह्र द्रष्टव्य छ। 'विराट्–दर्शन' अध्याय दसदेखि एघारसम्म स्पष्ट हुनेछ। अध्याय सात, नौ र पन्ध्रमा पनि यसमा प्रकाश पारिएको छ। अध्याय सात, नौ र सत्रमा बाह्य देवताहरूको अस्तित्वहीनता स्पष्ट भएर आउँछ। परमात्माको पूजास्थली हृदय–देश नै हो। जसमा ध्यान, श्वास–प्रश्वासको चिन्तन आदि क्रियाहरू, जुन एकान्तमा बसेर (मन्दिर, मूर्तिको सामुन्ने होइन) गरिन्छन्, अध्याय तीन, चार, छः र अठारमा स्पष्ट गरिएका छन्। धेरै सोच–विचार गर्ने के प्रयोजन? यदि अध्याय छःसम्म नै अध्ययन गर्नुभयो भने पनि 'यथार्थ गीता'को मूल आशय तपाईले बुझ्नसक्नु हुनेछ।

गीता जीविका–संग्रामको साधन होइन बरू जीवन–संग्राममा शाश्वत विजयको क्रियात्मक प्रशिक्षण हो, यसैले युद्ध–ग्रन्थ हो, जसले वास्तविक विजय दिलाउँछ। तर गीतामा प्रतिपादित युद्ध तरवार, धनुष, बाण, गदा र फर्साले लडिने साँसारिक युद्ध होइन, न त यी युद्धहरूमा शाश्वत विजय नै निहित छ। यो सद्–असद् प्रवृत्तिहरूको सङ्घर्ष हो, जसको रूपकात्मक वर्णनको परम्परा रहेको छ। वेदमा इन्द्र र वृत्र, विद्या र अविद्या, पुराणहरूमा देवासुर संग्राम, महाकाव्यमा राम र रावण, कौरव र पाण्डवको संघर्षलाई नै गीतामा धर्मक्षेत्र र कुरुक्षेत्र, दैवी सम्पद् र आसुरी सम्पद्, सजातीय र विजातीय, सद्गुण र दुर्गुणहरूको संघर्ष भनिएको छ।

यो संघर्ष जहाँ हुन्छ त्यो स्थान कहाँ छ? गीताको धर्मक्षेत्र र कुरुक्षेत्र भारतको कुनै भूखण्ड होइन बरू स्वयं गीताकारकै शब्दमा– '**इदं शरीरं कौन्तेय**

क्षेत्रमित्यभिधीयते।'- कौन्तेय! यो शरीर नै एउटा क्षेत्र हो। जसमा छरिएका राम्रा र नराम्रा बीज संस्काररूपले सधैं उम्रिन्छ। दस इन्द्रियहरू, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, पाँचवटै विकार र तीनवटै गुणहरूको विकार यस क्षेत्रको विस्तार हो। प्रकृतिबाट उत्पन्न यिनै तीन गुणहरूबाट विवश भएर मानिसले कर्म गर्नुपर्छ। ऊ क्षणमात्र पनि कर्मबिना बस्नसक्दैन। '**पुनरपि जननम् पुनरपि मरणम्, पुनरपि जननी जठरे शयनम्**' जन्म-जन्मान्तरदेखि नैत गर्दा-गर्दै बितिरहेका छ। यही 'कुरुक्षेत्र' हो। सद्गुरुको माध्यमले साधनाको वास्तविक प्रवाहमा परेर साधक जब परमधर्म परमात्मातिर अग्रसर हुन्छ तब यो क्षेत्र 'धर्मक्षेत्र' बन्छ। यो शरीर नै क्षेत्र हो।

यसै शरीरको अन्तरालमा अन्तःकरणका दुई प्रवृत्तिहरू पुरातन हुन- दैवी सम्पद् र आसुरी सम्पद्। दैवी सम्पद्मा छन् पुण्यरूपी पाण्डु र कर्त्तव्यरूपी कुन्ती। पुण्य जागृत हुनुभन्दा पहिले मानिसले जे जति कर्त्तव्य ठानेर गर्छन् आफूले बुझ्ेसम्म उसले कर्त्तव्य नै गर्छ, तर त्यसबाट कर्त्तव्य हुँदैन किनकि पुण्यबिना कर्त्तव्यलाई बुझ्न सकिंदैन। कुन्तीले पाण्डुसँग सम्बन्ध हुनुभन्दा पूर्व जे जति अर्जित गरकी थिइन्, त्यसको परिणाम हो 'कर्ण'। आजीवन कुन्तीका पुत्रहरूसँग लड्दै रह्यो। पाण्डवहरूको दुर्धर्ष शत्रु यदि कोही थियो भने त्यो हो 'कर्ण'। विजातीय कर्म नै कर्ण हो, जो बन्धनकारी छ। जसबाट परम्परागत रुढिहरूको चित्रण हुन्छ- पूजा-पद्धतिहरूले साथ छोड्दैनन्। पुण्य जागृत भएपछि धर्मरूपी 'युधिष्ठिर', अनुरागरूपी 'अर्जुन', भावरूपी 'भीम', नियमरूपी 'नकुल', सत्सँगरूपी 'सहदेव', सात्विकतारूपी 'सात्यकि', कायामा सामर्थ्यरूपी 'काशीराज', कर्तव्यद्वारा भवमाथि विजय 'कुन्तिभोज' इत्यादि इष्टोन्मुखी मानसिक प्रवृत्तिहरूको उत्कर्ष हुन्छ, जसको गणना सात अक्षौहिणी छ। 'अक्ष' दृष्टिलाई भनिन्छ। सत्यमयी दृष्टिकोणबाट जसको गठन भएको छ, त्यो हो दैवी सम्पद्। परमधाम परमात्मासम्मको दूरी तय गराउने यी सात खुड्किलाहरू 'सात भूमिकाहरू' हुन्, यी कुनै गणना-विशेष होइनन्। वस्तुतः यी प्रवृत्तिहरू अनन्त छन्।

अर्कोतिर छ 'कुरुक्षेत्र', जसमा दस इन्द्रियहरू र एउटा मन एघार अक्षौहिणी सेना छन्। मनसहित इन्द्रियमयी दृष्टिकोणले जसको गठन भएको छ, त्यो हो

आसुरी सम्पद्, जसमा छ अज्ञानरूपी 'धृतराष्ट्र' जो सत्य जान्दाजान्दै पनि अन्धो बनी रहन्छ। उनकी सहचारिणी हुन् 'गान्धारी'– इन्द्रिय आधार भएकी प्रवृत्ति। यिनैसँग छन्– मोहरूपी 'दुर्योधन', दुर्बुद्धिरूपी 'दुःशासन', विजातीय कर्मरूपी 'कर्ण', भ्रमरूपी 'भीष्म', द्वैतको आचरणरूपी 'द्रोणाचार्य', आसक्तिरूपी 'अश्वत्थामा', विकल्परूपी 'विकर्ण', अधुरो साधनामा कृपाको आचरणरूपी 'कृपाचार्य' र यी सबैका बीच जीवरूपी 'विदुर' जो अज्ञानसँग बस्छ तर दृष्टि सधैं पाण्डवहरूमा रहन्छ, पुण्यबाट प्रवाहित प्रवृत्तिमा रहन्छ; किनकि आत्मा परमात्माको शुद्ध अंश हो। यसप्रकार आसुरी सम्पद् पनि अनन्त छन्। क्षेत्र एउटै छ यो शरीर र यसमा लडाई गर्ने प्रवृत्तिहरू दुई छन्। एउटा प्रकृतिमा विश्वास दिलाउने नीच–अधम योनिहरूको कारण बन्छ भने अर्को परमपुरुष परमात्मामा विश्वास र प्रवेश गराउँछ। तत्त्वदर्शी महापुरुषको संरक्षणमा क्रमशः साधन गरेमा दैवी सम्पद्को उत्कर्ष र आसुरी सम्पद्को सर्वथा शमन हुन्छ। जब कुनै विकार नै रहँदैन, मनको सर्वथा निरोध र निरुद्ध मनको पनि विलय हुन्छ, त्यसपछि दैवी सम्पद्को आवश्यकता पनि समाप्त भएर जान्छ। अर्जुनले देखे कि कौरव–पक्ष सँग–सँगै पाण्डव–पक्षका योद्धाहरू पनि योगेश्वरमा विलीन भैइरहेका छन्। पूर्तिपश्चात् दैवी सम्पद् पनि विलीन भएर जान्छ, अन्तिम शाश्वत परिणाम निस्केर आउँछ। यसपछि महापुरुषले यदि केही गर्छ भने त्यो मात्र अनुयायीहरूको मार्गदर्शनको लागि हो।

लोक–संग्रहको यसै भावनाले महापुरुषहरूले सूक्ष्म मनोभावहरूको वर्णन तिनीलाई ठोस स्थूलरूप दिएर गरेका छन्। 'गीता' छन्दोबद्ध छ, व्याकरणसम्मत छ; तर यसका पात्रहरू प्रतीकात्मक छन्, अमूर्त योग्यताहरूका मूर्तरूपमात्र हुन्। गीताको आरम्भमा तीस–चालीस पात्रहरूको नाम लिइएको छ, जसमा आधा सजातीय र आधा विजातीय छन्। केही पाण्डव पक्षका र केही कौरव पक्षका छन्। 'विश्वरूपदर्शन'का बेला यीमध्ये चार–छः नामहरू पुनः आएका छन्, नत्र भने सम्पूर्ण गीतामा यी नामहरूको चर्चा पनि छैन। एकमात्र अर्जुन नै यस्तो पात्र हुन जो आरम्भदेखि अन्त्यसम्म योगेश्वर श्रीकृष्णको समक्ष रहन्छन्। त्यो अर्जुन पनि योग्यताको प्रतीक मात्र हो, कुनै व्यक्ति विशेष होइन। गीताको

आरम्भमा अर्जुन सनातन कुलधर्मको लागि विकल छ; तर योगेश्वर श्रीकृष्णले यसलाई अज्ञान भन्दै निर्देश दिनुभयो कि आत्मा नै सनातन हो, शरीर नाशवान् छ, यसैले युद्ध गर। यस आदेशले यो स्पष्ट हुँदैन कि अर्जुनले कौरवहरूलाई नै मार्नुपर्छ। पाण्डव–पक्षका पनि त शरीरधारी नैत थिए। दुई तिरै त आफन्त नै थिए। संस्कारहरूमा आधारित शरीर के तरवारले काटेर समाप्त हुनसक्छ? जब शरीर नाशवान् छ, जसको अस्तित्व नै छैन भने अर्जुन को थिए? कसको रक्षाको लागि श्रीकृष्ण उभिनु भएको थियो? के कुनै शरीरधारीको रक्षार्थ उभिनु भएको थियो? श्रीकृष्णले भने– "जसले शरीरको लागि परिश्रम गर्छ, यस्तो पापायु मूढबुद्धि पुरुष व्यर्थ नै बाँची रहन्छ।" यदि श्रीकृष्ण कुनै शरीरधारीको रक्षामा उभिनु भएको थियो भने उहाँ पनि मूढबुद्धि र व्यर्थ बाँच्ने व्यक्ति हुनुहुन्थ्यो। वस्तुतः अनुराग नै अर्जुन हो।

अनुरागीका लागि महापुरुष सधैं उभिनु हुन्छ। अर्जुन शिष्य थिए र श्रीकृष्ण एउटा सद्‌गुरु थिए। विनयी भएर उनले भने– "धर्मको मार्गमा मोहितचित्त म तपाईसँग सोद्धैछु। जो श्रेय (परम कल्याणकारक) छ, त्यो उपदेश मलाई दिनुहोस्। अर्जुनले श्रेय चाहेका थिए, प्रेय (भौतिक पदार्थ) होइन। केवल भन्ने मात्र नगर्नुस्, मलाई साध्नुस्, सम्हाल्नुस्। म तपाईको शिष्य हुँ र तपाईको शरणमा परेको छु।" यसैप्रकार गीतामा स्थान–स्थानमा स्पष्ट छ कि अर्जुन आर्त अधिकारी हुन् र योगेश्वर श्रीकृष्ण एउटा सद्‌गुरु हुनुहुन्छ। ऊसद्‌गुरु अनुरागीकोसाथ सधैं रहन्छन्, उसको मार्गदर्शन गर्दछन्।

जब कुनै व्यक्ति भावुकतावश 'पूज्य श्रीपरमहंसज्यू महाराज'को नजिक बस्नका लागि आग्रह गर्न लाग्दथ्यो, त्यसबेला उहाँले भन्नुहुन्थ्यो– "जाऊ, शरीरले जहाँ बसे पनि मनले मेरो नजिक आउदै गर्नु। बिहान–बेलुका राम, शिव, ॐ कुनै एउटा दुई–ढाई अक्षरको नाम जप गर र मेरो स्वरूपलाई आफ्नो हृदयमा ध्यान गर। एक मिनेट पनि स्वरूप ध्यानमा ल्याउन सक्यौ भने जसको नाम भजन हो, त्यो म तिमीलाई दिनेछु। यसभन्दा बढी अघि सर्न सक्यौ भने म तिम्रो हृदयमा रथवान् बनेर सधैं तिम्रो साथमा रहनेछु। जब स्वरूप पकडमा आउँछ, त्यसपछि महापुरुष यति नजिक हुन्छन् जति हात–खुट्टा, नाक–कान

इत्यादि तपाईको नजिक छन्। तपाई हजारौं किलोमिटर टाढा भएपनि उनी सधैं तपाईको नजिक बस्छन्। मनमा विचारहरू उठ्नु भन्दा अगाडि नै उनले मार्गदर्शन गर्नथाल्दछन्। अनुरागीको हृदयमा ती महापुरुष सधैं आत्मासित अभिन्न जाग्रत रहन्छन्। अर्जुन अनुरागको प्रतीक हो।

गीताको एघारौं अध्यायमा योगेश्वर श्रीकृष्णको ऐश्वर्य देखेर अर्जुनले आफ्ना क्षुद्र त्रुटिहरूको लागि क्षमायाचना गर्नथाले। श्रीकृष्णले क्षमागर्दै याचनाको अनुरूप सौम्य स्वरूपमा आएर भने– "हे अर्जुन! मेरो यस स्वरूपलाई पहिले कसैले पनि न त देखेको थियो न त भविष्यमा देख्नेछ।" त्यस्तो भए त गीता हाम्रोलागि व्यर्थ हो किनकि त्यस्तो दर्शनको योग्यताहरू अर्जुनसम्म मात्र सीमित थिए, जबकि त्यसै बेला संजयले पनि देखिराखेका थिए। पहिले पनि उहाँले भनेका थिए– "धेरै जसो योगीहरू ज्ञानरूपी तपबाट पवित्र भएर मेरो साक्षात् स्वरूपलाई प्राप्त गरिसकेका छन्।" अन्त्यमा त्यो महापुरुषले के भन्न खोज्नु भएको हो? वस्तुतः अनुराग नै 'अर्जुन' हो, जो तपाईको हृदयको भावना–विशेष हो। अनुरागविहीन मानिसले न त कहिलै पूर्वकालमा देख्न सकेको छ र न भविष्यमा देख्न पाउने छ।

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा।
किये जोग तप ग्यान विरागा।।

अतः अर्जुन एउटा प्रतीक हो। यदि प्रतीक होइन भने गीताको पछि लाग्न छोड्नुस्। गीता तपाईको लागि होइन; किनकि यस्तो दर्शनको योग्यता अर्जुनसम्म मात्र सीमित रह्यो।

अध्यायको अन्त्यमा योगेश्वर श्रीकृष्णले निर्णय दिनुहुन्छ– "अर्जुन! अनन्य भक्ति र श्रद्धाले म यसप्रकार प्रत्यक्ष देख्नको लागि (जस्तो तिमीले देख्यौं), तत्वबाट स्पष्ट जान्नको लागि र प्रवेशको लागि पनि सहज छु।" अनन्य भक्ति अनुरागकै अर्को रूप हो र यही अर्जुनको स्वरूप पनि हो। अर्जुन बटुवाको प्रतीक हो। यसप्रकार गीताका पात्रहरू प्रतीकात्मक हुन्। यथास्थान त्यसका सङ्केतहरू छन्।

हुनसक्छ कोही ऐतिहासिक श्रीकृष्ण र अर्जुन भएका होलान्, निश्चय पनि कुनै विश्वयुद्ध भएका होला; तर गीतामा भौतिक युद्धको चित्रण कदापि छैन्। त्यस ऐतिहासिक युद्धको मुहानमा डराएर आत्तिने अर्जुन थिए न कि सेना; सेना त लडाईको लागि तयार उभिएरका थिए।

के गीताको उपदेश दिएर श्रीकृष्णले सव्यसाची अर्जुनलाई सेनायोग्य बनाउनु भयो? वस्तुतः साधन लेखिनमा आउदैन, सबैथोक पढिसके पछि पनि हिड्नु बाँकी नै रहन्छ। यही प्रेरणा 'यथार्थ गीता' हो।

श्री गुरु पूर्णिमा, सद्गुरु कृपाश्रयी, जगत्बन्धु

२४ जुलाई, १९८३ ई. **स्वामी अड़गड़ानन्द**

